International Journal of Applied Research 2016; 2(3): 166-170

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(3): 166-170
www.allresearchjournal.com
Received: 15-01-2016
Accepted: 21-02-2016

डॉ. मीरा शर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग, लक्ष्मीबाई
महाविद्यालय, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
डॉ. मीरा शर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग, लक्ष्मीबाई
महाविद्यालय, दिल्ली
विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

हेलाराज की टीका के आलोक में भर्तृहरि-दर्शन का व्याख्यान

डॉ. मीरा शर्मा

सारांश

व्याकरण–दर्शन दर्शनशास्त्र की एक विधा है। भर्तृहरि द्वारा प्रणीत 'वाक्यपदीयम्' व्याकरण–दर्शन का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। यही कारण है कि वाक्यपदीय नामक ग्रन्थ व्याकरण–दर्शन से सम्बन्धित होने के कारण केवल व्याकरण के अध्येताओं के लिए ही नहीं; अपितु दर्शन के अध्येताओं के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। वाक्यपदीय के तीनों काण्ड–ब्रह्मकाण्ड, वाक्यकाण्ड और पदकाण्ड, वाक्यपदीय में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं किन्तु वाक्यपदीय वह ग्रन्थ है जो विशेष रूप से पद और वाक्यों से सम्बन्धित ग्रन्थ है। प्रथमकाण्ड में शब्दब्रह्म के स्वरूप का विमर्श होने के कारण, वह काण्ड समग्र वाक्यपदीय ग्रन्थ की प्रस्तावनाभूत मूलतत्त्व का विशद वर्णन करता है। वैयाकरणों के अनुसार वाक्य ही लौकिक व्यवहार का साधन होता है, इसलिए वर्ण, पद की अपेक्षा वाक्य ही प्रधान होता है। वाक्यपदीय के नाम से ही स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ केवल वाक्य से ही नहीं अपितु वाक्य जिन पदों से बनता है उससे भी सम्बन्धित है। अतः वाक्यपदीय के तीनों काण्डों में ब्रह्म–वाक्य–पद तीनों का विशद रूप से प्रतिपादन किया गया है। भर्तृहरि का यह ग्रन्थ केवल मूल कारिकाओं में निबद्ध है, जिस कारण अनेकशः अनेक स्थलों पर कारिकाओं में निहित भाव को समझना कठिन हो जाता है। ऐसे में वाक्यपदीय ग्रन्थ पर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखी गई टीकाओं के आलोक में उन कारिकाओं का अर्थ समझा जाता है। अतः मेरे शोध–पत्र का विषय है–'हेलाराज की टीका के आलोक में भर्तृहरि–दर्शन का व्याख्यान । प्रस्तुत पत्र में मेरे द्वारा वाक्यपदीय के तृतीय काण्ड पर उपलब्ध होने वाली हेलाराज की टीका के माध्यम से पदकाण्ड की कारिकाओं में निहित गूढ़ अभिप्राय को समझने की प्रविधि का विशद रूप से विवेचन किया गया है। इस पत्र के माध्यम से अन्य ग्रन्थों पर लिखी गई टीकाओं की सहायता से उन मूल ग्रन्थों मे प्रवेश करने की दिशा प्राप्त होगी। आज जबकि विश्व में भर्तृहरि के भाषादर्शन को लेकर दार्शनिकों, भाषावैज्ञानिकों एव मनोवैज्ञानिकों के बीच रुचि व्याप्त है, इस प्रकार का अध्ययन भर्तृहरि के दर्शन में प्रवेश करने के इच्छुक पाठकों के लिए दिशा–निर्देशन का कार्य करेगा।

कूटशब्द: व्याकरण–दर्शन, वाक्यपदीय, पदकाण्ड, भर्तृहरि, हेलाराज, प्रकीर्णप्रकाश, दिक्, काल एवं क्रिया

प्रस्तावना

दर्शनशास्त्र वह शास्त्र है जिसके द्वारा किसी भी वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है। व्याकरण–दर्शन दर्शनशास्त्र की वह विधा है जिसमें व्याकरणिक विषयों (पद एवं वाक्य) का विवेचन दार्शनिक दृष्टि से किया गया है। भर्तृहरि एक ऐसे विद्वान् हैं जिन्होंने व्याकरण और दर्शन दोनों विषयों के अद्वितीय समन्वय को प्रस्तुत करने वाले वाक्यपदीय नामक ग्रन्थ की रचना की। भर्तृहरि ने जगत् के सृष्टिकारणभूत उस एक ब्रह्म में शब्द की स्थापना कर, व्याकरणदर्शन में 'शब्दाद्वैतवाद' नामक एक नये सिद्धान्त की स्थापना की। यद्यपि व्याकरणदर्शन के बीज पहले से ही पतञ्जलि के महाभाष्य में यत्र तत्र विकीर्ण अवस्था में मिलते हैं किन्तु व्याकरणदर्शन को एक व्यवस्थित शास्त्र का रूप देने का श्रेय भर्तृहरि को जाता है।

वाक्यपदीय मूल कारिकाओं में निबद्ध ग्रन्थ है, उन कारिकाओं को पढ़ने मात्र से भर्तृहरि द्वारा दिये गये उन कारिकाओं में निहित अर्थ या भाव को नहीं जाना जा सकता, उसके लिए वाक्यपदीय के तीनों काण्डों - ब्रह्मकाण्ड, वाक्यकाण्ड एवं पदकाण्ड पर उपलब्ध टीकाओं का आश्रय लेना पड़ता है। यद्यपि भर्तृहरि स्वयं इस बात से अवगत थे कि मात्र कारिकाओं के अर्थज्ञान से उनके दर्शन को पूर्ण रूप से नहीं जाना जा सकता; इसलिए वाक्यपदीय के प्रथमकाण्ड पर मिलने वाली हरिवृषभ द्वारा रचित स्वोपज्ञवृत्ति भर्तृहरि की स्वयं अपनी ही कृति है, ऐसा कुछ विद्वानों का मानना है। यहाँ तक कि वाक्यपदीय के द्वितीय काण्ड के कुछ अंशों पर भी हरिवृषभ वृत्ति प्राप्त होती है जो कि अपूर्ण है।

केवल ग्रन्थकार ही नहीं, अपितु टीकाओं को लिखने के बाद टीकाकारों के द्वारा भी वाक्यपदीय की मूल कारिकाओं के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए कई स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की गई; यथा हेलाराज ने वाक्यपदीय के तृतीय काण्ड–पदकाण्ड पर केवल 'प्रकीर्ण-प्रकाश' नामक टीका ही नहीं लिखी, अपितु उन्होंने प्रथम काण्ड पर 'अद्वय-सिद्धि' नामक ग्रन्थ, कात्यायन के वार्तिकों पर 'वार्तिकोन्मेष' तथा तृतीय काण्ड के विषय क्रियासमुद्देश पर 'क्रियाविवेक' आदि स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे, जो भर्तृहरि की कारिकाओं में निहित आशय को रखांकित करने में सहायक सिद्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त हेलाराज के द्वारा प्रथम काण्ड पर शब्दप्रभा नामक टीका भी लिखी गई जिसका वर्णन वे कई बार अपनी प्रकीर्णप्रकाश नामक टीका में कर चुके हैं; किन्तु काल के प्रभाव के कारण वे सारी कृतियाँ आज लुप्त हो चुकी हैं, जो भर्तृहरि-दर्शन के व्याख्यान में अपना योगदान दे सकती थीं। अतः हमें वाक्यपदीय के अध्ययन के लिए आज टीकाओं पर ही आश्रित होना पड़ता है। वाक्यपदीय के पदकाण्ड में निहित भर्तृहरि के दर्शन सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट और व्याख्यायित करने के लिए विद्वानों को हेलाराज की टीका पर आश्रित होना पड़ता है क्योंकि वाक्यपदीय के तृतीय काण्ड उपलब्ध होने वाली यह एकमात्र टीका है। यद्यपि पदकाण्ड में चौदह समुद्देश हैं किन्तु यहाँ केवल तीन समुद्देशों–दिक्, क्रिया एवं काल को केन्द्र में रखकर ही हेलाराज की टीका के द्वारा भर्तृहरि-दर्शन को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। अतः प्रस्तुत शोध-पत्र का विषय है–'हेलाराज की टीका के आलोक में भर्तृहरि-दर्शन का व्याख्यान । वस्तुतः ये टीकाएं, भाष्य या प्रकरण ग्रन्थ यदि उपलब्ध न हो तो मूल पाठ के अर्थ को समझना कठिन हो जाएगा। हेलाराज ने भर्तृहरि-दर्शन को स्पष्ट करने के लिए जिस प्रविधि का प्रयोग किया है, वह हेलाराज की अद्वितीय प्रतिभा या पाण्डित्य को दर्शाती है। हेलाराज कारिकाओं के सभी शब्दों की व्याख्या नहीं करते अपितु कारिकाओं में निहित मुख्य विचार को अभिव्यक्त करते हैं। कई बार वे कारिका से कोई विशिष्ट शब्द ले लेते हैं, जिनका कारिका में कोई विशेष अर्थ होता है और जो भर्तृहरि के विचारों को स्पष्ट करने में विशेष रूप से सहायक होते हैं।[1]

भर्तृहरि वाक्यपदीय में मीमांसक, सांख्य, वैशेषिक, बौद्ध आदि दर्शन सम्बन्धी मत देते हैं किन्तु वे अपनी कारिकाओं में इन सम्प्रदायों का नामोल्लेख नहीं करते, केवल 'केचित्', 'अपरे' या इस तरह के अन्य शब्दों से उनका संदर्भ देते हैं। किन्तु हेलाराज को इन दूसरे विद्वानों के सिद्धान्तों की जानकारी थी जो वे अपनी टीका में स्पष्ट करते चलते हैं। अतः हेलाराज की टीका यह समझने में सहायता करती है कि कौन सा मत भर्तृहरि का है और कौन से मत दूसरे दार्शनिक-सम्प्रदायों के हैं। उदाहरण के तौर पर कालसमुद्देश की पहली कारिका को ले सकते हैं, यहाँ काल को एक, नित्य और विभु द्रव्य कहा गया है।[2] किन्तु कारिका को देखकर प्रश्न उठता है कि भर्तृहरि के मत में काल को शक्ति माना गया है, द्रव्य नहीं। फिर भर्तृहरि यहाँ काल को द्रव्य मानने वाले किस सम्प्रदाय का उल्लेख कर रहे हैं? तब हेलाराज की टीका से ज्ञात होता है कि भर्तृहरि यहाँ काल को द्रव्य मानने वाले वैशेषिक दर्शन का मत दे रहे हैं।[3] अन्य (वैशेषिक, सांख्य) दार्शनिक सम्प्रदायों में स्वीकृत कालस्वरूप और दिक्स्वरूप को जाने बिना भर्तृहरि के कालविषयक और दिग्विषयक सिद्धान्तों को समझना मुश्किल हो जाएगा, इसलिए भर्तृहरि की कारिकाओं में वर्णित इन सम्प्रदायों का नामोल्लेख हेलाराज ने अपनी टीका में किया है। चूंकि अन्य सम्प्रदायों के मतों पर विचार करने के बाद ही अपने विचार स्पष्ट हो पाते हैं।[4] यही कारण है कि भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में दिक्, काल आदि के विषय में अपना मत देने के साथ-साथ अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों के मतों को भी दिया है।

भर्तृहरि की कारिका से पहले उसकी प्रयोजकता, महत्त्व एवं आवश्यकता को सिद्ध करके हेलाराज भर्तृहरि की कारिका को सार्थकता प्रदान करते हैं क्योंकि बिना प्रयोजन को जाने बिना उस कारिका का अर्थ समझा नही जा सकता। हेलाराज की टीका से ज्ञात होता है कि आगामी कारिका में किस दार्शनिक सम्प्रदाय के अनुसार क्रिया का वर्णन किया किया जा रहा है; उदाहरण के तौर पर, हेलाराज की टीका हमें बतलाती है कि किस कारिका में भर्तृहरि व्यक्तिवादियों की दृष्टि से क्रिया का वर्णन कर रहे हैं और कहाँ वे जातिवादियों की दृष्टि से क्रिया का वर्णन कर रहे हैं?[5] भर्तृहरि की किस कारिका में विवर्तदर्शन (अद्वैतवाद) के

---

[1])i) परापरत्वे मूर्तानां देशभेदनिबन्धने। –(वा०प०, 3.6.4) मूर्तिरसर्वगतद्रव्यपरिमाणम्। हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, i, पृ०212

(ii) अदेशाश्चाप्यभागाश्च निष्क्रमा निरुपाश्रयाः। –(वा०प०, 3.6.14) तथा अविद्यमान उपाश्रय उपाधिः स्वभावान्यथात्वापादको येषां ते निरुपाश्रयाः – हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, i, पृ०222

[2] नित्यमेकं विभु द्रव्यं परिमाणं क्रियावताम्। –वा०प०, 3.9.1

[3] परापरादिप्रत्ययलिङ्गो व्यापक एकोऽमूर्तोऽत कालः वैशेषिकैराम्नातः। – हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, ii, पृ० 41

[4] प्रज्ञा विवेकं लभते भिन्नैरागमदर्शनैः। –वा०प०, 2.484

[5] (i) यथा व्यक्तिदर्शने.... अनन्तरं फलं यस्याः...)3.8.15) इति मतान्तरमुपदर्शितं तथात्रापि जातिदर्शने प्राह। –हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, ii, पृ०19

द्वारा क्रिया का वर्णन किया गया है और किस कारिका में परिणामवाद (सांख्यदर्शन) के द्वारा क्रियाविषयक मत दिया गया है, यह भी हेलाराज की टीका से ही ज्ञात होता है।[6] इस प्रकार हेलाराज की टीका भर्तृहरि की प्रत्येक कारिका से पहले उसका एक निश्चित संदर्भ देती है जिससे उस कारिका के अर्थ को समझने में सहायता मिलती है।

कई बार भर्तृहरि दूसरों का मत देते हुए अपना अभिमत प्रकट कर देते है; यथा भर्तृहरि कई बार विज्ञानवादियों के माध्यम से अपना मत देते हुए प्रतीत होते हैं क्योंकि विज्ञानवादी और भर्तृहरि दोनों ही मानते हैं कि भाव अन्तःस्वरूप या विकल्पात्मक रूप वाले होते हैं और ज्ञान में भासित होते हैं। इसलिए कई स्थलों पर भर्तृहरि उनके माध्यम से अपना मत दे रहे होते हैं। दिक्समुद्देश में दिक् का अन्तःस्वरूप मानने वालों के अनुसार जब दिक् की चर्चा की जाती है तो वहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि भर्तृहरि की दृष्टि में भी दिक् का बाह्य अस्तित्व नहीं है अपितु बुद्धिनिष्ठ अस्तित्व है।[7] क्योंकि भर्तृहरि ने एक स्थल पर दिशा को अन्तःपदार्थ के रूप में ही स्वीकार किया है।[8] इस प्रकार इस प्रकार हेलाराज की टीका अनेक दुरुह स्थलों पर भर्तृहरि के विचारों को स्पष्ट करने में सहायक है।

यदि किसी कारिका में भर्तृहरि किसी सिद्धान्त को उदाहरण से स्पष्ट कर रहे हैं तो उसको अपनी टीका में हेलाराज 'अननैव दृष्टान्तेण', 'उदाहरणेन' आदि शब्दों के द्वारा बतलाते हैं। इस प्रकार क्रियासमुद्देश में भर्तृहरि ने किस कारिका में दृष्टान्त दिया है, यह हेलाराज ने स्थान-स्थान पर संकेतित किया है।[9] हेलाराज अपनी टीका में केवल भर्तृहरि की दृष्टान्त वाली कारिकाओं के विषय में नहीं बताते अपितु उन्हें जहाँ आवश्यक प्रतीत होता है वह अपनी टीका में भी दृष्टान्त के माध्यम से भर्तृहरि के विचारों को समझाने का प्रयास करते हैं। उदाहरण के तौर पर, दिक्समुद्देश में 'पूर्व' आदि दिक्शब्दों से दिक्-अर्थ का ज्ञान स्वाभाविक रूप से होता है, उसमें किसी व्यवस्था की अपेक्षा नहीं होती, इसको उदाहरण से समझाते हुए हेलाराज कहते हैं कि जिस प्रकार 'शोण' शब्द से लोहित अर्थ स्वाभाविक रूप से ज्ञात होता है वहाँ किसी लौह-प्रवृत्तिनिमित्त की अपेक्षा नहीं होती, इसी प्रकार 'कृष्ण' शब्द से स्वाभाविक रूप से वासुदेव का बोध होता है वहाँ कृष्णगुण-प्रवृत्तिनिमित्त की अपेक्षा नहीं होती। उसी प्रकार 'पूर्व' आदि दिक् शब्दों से स्वाभाविक रूप से दिक्-अर्थ का ज्ञान होता है वहाँ व्यवस्थानिमित्त की अपेक्षा नहीं होती।[10]

भर्तृहरि एक कारिका से दूसरी कारिका तक आते-आते जो विषय को बदल देते हैं, उस विषय का ज्ञान हेलाराज की टीका से हो जाता है। कालसमुद्देश की 62वीं कारिका में कालविषयक मतान्तर दिये गये हैं, उसके एकदम बाद नित्य माने जाने वाले शब्द में ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि भेदों की बात आती है। यहाँ एकदम विषय बदल जाता है किन्तु तभी हेलाराज की टीका के द्वारा यहाँ अगली कारिका की प्रयोजकता सिद्ध होती है। वे कहते हैं कि नित्य ब्रह्म की कालशक्ति नित्य होने के कारण शब्द में कैसे भेदों को प्राप्त कर लेती है? इस प्रकार दोनों कारिकाओं में अन्वय स्थापित हो जाता है।[11]

इस प्रकार हेलाराज की टीका एक कारिका को दूसरी कारिका से जोड़ने में कड़ी का काम करती है जिससे कारिकाओं में परस्पर अन्वय बना रहता है। उदाहरण के तौर पर कालसमुद्देश की 29वीं और 30वीं कारिकाओं के बीच कोई अन्वय प्राप्त नहीं होता है किन्तु 30वीं कारिका से पहले हेलाराज शंका उठाते हैं कि यदि काल एक है, तो उसकी क्रमरूपता कैसे संभव होती है, जिस कारण टीका में इस पंक्ति के आने से 30वीं कारिका 29वीं कारिका से अन्वित प्रतीत होती है।[12]

किसी संकेत के बिना यह जानना कठिन हो जाता है कि एक विषय कहाँ समाप्त हो गया और दूसरा विषय कहाँ से प्रारम्भ हो रहा है। प्रस्तुत की गई कारिका पहले वाले विषय को जारी रख रही है या नया प्रारम्भ कर रही है, यह टीकाओं की सहायता से ज्ञान होता है क्योंकि टीका प्रत्येक कारिका और कभी-कभी

(ii) अन्ते या वा क्रियाभागे जातिः सैव क्रिया स्मृता। –वा०प०, 3.8.21

[6])i) पूर्वं तु परिणामदर्शनेनोक्ता। –हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, ii, पृ० 26

(ii) व्यापि सौक्ष्म्यं क्वचिद् याति क्वचित् संहन्यते पुनः। अकुर्वाणोऽथवा किञ्चित् स्वशक्त्यैवं प्रकाशते॥ –वा०प०, 3.8.33

(iii) तदेवमियं विवर्तदर्शनेन क्रियाख्याता। –हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, ii, पृ० 26

(iv) सर्वरूपस्य तत्त्वस्य यत् क्रमेणेव दर्शनम्। भागैरिव प्रक्लृप्तिश्च तां क्रियामपरे विदुः॥ –वा०प०,3.8.34

[7] अन्तःकरणधर्मो वा बहिरेवं प्रकाशते। –वा०प०,3.6.23

[8] द्यौः क्षमा वायुरादित्यः सागराः सरितो दिशः।

अन्तःकरणतत्त्वस्य भागा बहिरवस्थिताः॥ – वा०प०, 3.7.41

[9] (i) भिन्नाभिधानत्वे धर्मद्वययोगे निदर्शनमत्राह। –हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, ii, पृ० 32

(ii) बन्धुता भेदरूपेण बन्धुशब्दे व्यवस्थिता। समूहो बन्ध्ववस्था तु प्रत्ययेनाभिधीयते॥ –वा०प०, 3.8.48

[10] यथा शोणशब्दो लोहित एवार्थे वर्तते। अथ च लौहित्यं प्रवृत्तिनिमित्तत्वेन नापेक्षते। कृष्णशब्दश्च भगवति वासुदेवे वर्तते। न च कृष्णं गुणं निमित्तत्वेनोपादत्ते। तदित्थमन्तर्भावितावधयो दिक्शब्दाः पूर्वादयो रूढाः। –हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, i, पृ०219-220

[11])i) शक्त्यात्मदेवतापक्षैर्भिन्नं कालस्य दर्शनम्।

प्रथमं तदविद्यायां यद्विद्यायां न विद्यते॥ –वा०प०, 3.9.62

(ii) कथं तर्हि नित्यानां शब्दानां कालकृतो ह्रस्वत्वादिभेदः। –हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, ii, पृ०65

(iii) अभेदे यदि कालस्य ह्रस्वदीर्घप्लुतादिषु।

दृश्यते भेदनिर्भासः स चिरक्षिप्रबुद्धिवत्॥ –वा०प०, 3.9.63

[12])i) जहाति सहवृत्ताश्च क्रियाः स समवस्थिताः। व्रीहिर्यथोदकं तेन हायनाख्यां प्रपद्यते॥ –वा०प०,3.9.29

(ii) यदि तर्ह्यवस्थित एकः कालः, कथमस्य क्रमरूपतेत्याह। –हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, ii, पृ०51

(iii) प्रतिबन्धाभ्यनुज्ञाभ्यां वृत्तिर्या तस्य शाश्वती।

तया विभज्यमानोऽसौ भजते क्रमरूपताम्॥ –वा०प०, 3.9.30

सम्पूर्ण काण्ड या सम्पूर्ण समुद्देश का सन्दर्भ देती है।[13] कभी-कभी बीच में पूर्ववर्णित बिंदुओं का सार प्रस्तुत करती है और आगामी विषय का संकेत दे देती है। ये संकेत एक निश्चित अवधि तक भर्तृहरि के विचारों को क्रमशः समझने में हमें समर्थ बनाते हैं।

हेलाराज अपनी टीका में अनेक बार ऐसे उद्धरण देते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि भर्तृहरि ने अपनी सम्पूर्ण वाक्यपदीय में इन दोनों विचारों को बनाए रखा है– 1. 'सर्ववेदपारिषदं हीदं शास्त्रम्' के अनुसार व्याकरण किसी एक वेद से सम्बद्ध नहीं है अपितु वह सभी वेदों से अपना सम्बन्ध बनाए हुए है। 2. 'शब्दप्रमाणका वयम्। यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्' के अनुसार वैयाकरण शब्दप्रमाणक होते हैं और उनकी दृष्टि में जो शब्द कहता है वे उसी को प्रमाण मानते हैं।[14] इस प्रकार हेलाराज की टीका के आलोक में भर्तृहरि-दर्शन के इन आधारभूत सिद्धान्तों का ज्ञान हो पाता है।

हेलाराज की टीका में दिये गये अनेक उद्धरणों से ज्ञात होता है कि जहाँ भर्तृहरि एक ओर शब्दों द्वारा उपस्थापित अर्थ को स्वीकार करते हैं वहीं दूसरी ओर वे लौकिक व्यवहार में स्वीकृत पदार्थ का स्वरूप भी स्वीकार करते हैं।[15] वस्तुतः उनका मानना है कि व्याकरण भी लोक का अनुगमन करता है। उदाहरण के तौर पर, यदि लोक में 'देवश्चेद् वृष्टो सम्पन्नाः शालयः' जैसे भविष्यत्कालिक वाक्य में भूतकाल का प्रयोग किया जाता है तो भर्तृहरि भी वहाँ भूतकाल को सिद्ध करने के लिए कारण में कार्य का अध्यारोप करके उसी प्रयोग का समर्थन करते हैं। इसीलिए वे अपनी कारिकाओं में काल, दिक् एवं क्रिया को केवल दार्शनिक दृष्टि से न स्वीकारते हुए उनका व्यावहारिक रूप भी स्वीकार करते हैं, इसलिए वे काल और दिक् के अवान्तर विभागों की बात करते हैं।[16] हेलाराज द्वारा दिए गए इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि भर्तृहरि उस विचारधारा के अनुयायी हैं जहाँ व्याकरण सर्वदर्शनसाधारण है और इस से सभी के साथ अपनी संगति बैठानी है।

हेलाराज अपनी टीका में बार-बार यह उल्लेख करना नहीं भूलते कि भर्तृहरि वैयाकरण होने के साथ-साथ अद्वैतवादी भी हैं। कई स्थलों पर हेलाराज बतलाते हैं कि सत्ताद्वैतवाद (दर्शन) के माध्यम से भर्तृहरि अपने अद्वैतवाद की ही पुष्टि कर रहे हैं।[17] दिक्, क्रिया एवं काल का अविभाज्य रूप भर्तृहरि के शब्दाद्वैतवाद की ओर ले जाता है, जहाँ उनकी दृष्टि है कि सबके मूल में शब्दब्रह्म है, बाकी सब कुछ उसका विवर्त है जो उसकी शक्तियों द्वारा प्रक्षेपित है। वस्तुतः हेलाराज की टीका उस नौका के समान है जिस पर आरूढ़ होकर भर्तृहरि की कारिकाओं में निहित गूढ़ अभिप्राय को जाना जा सकता है अन्यथा इसके अभाव में भर्तृहरि की कारिकाओं के भाव को समझना कठिन ही नहीं अपितु असंभव हो जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. व्याकरणमहाभाष्यम् (पतञ्जलि)

   (भाग 1-6, प्रदीपोद्योत सहित), संपा० श्री भार्गव शास्त्री भिकाजी जोशी, (निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई), पुनर्मुद्रित संस्करण, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1987.

2. वाक्यपदीयम् (भर्तृहरि),

   प्रथम काण्ड, वृत्ति और वृषभदेव की पद्धति सहित, संपा० के०ए० सुब्रह्मण्य अय्यर, दक्कन कॉलेज पोस्टग्रेजुएट और रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1966.

   द्वितीय काण्ड, वृत्ति और पुण्यराज की टीका सहित, संपा० के०ए० सुब्रह्मण्य अय्यर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1983.

   तृतीय काण्ड, प्रथम भाग, हेलाराज की प्रकीर्णप्रकाश व्याख्या सहित, संपा० के०ए० सुब्रह्मण्य अय्यर, दक्कन कॉलेज पोस्टग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1994 (पुनर्मुद्रित संस्करण)।

   तृतीय काण्ड, द्वितीय भाग, हेलाराज की प्रकीर्णप्रकाश व्याख्या सहित, संपा० के०ए० सुब्रह्मण्य अय्यर, दक्कन कॉलेज पोस्टग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1973.

3. अय्यर, के०ए० सुब्रह्मण्य

   1981: भर्तृहरि (प्राचीन टीकाओं के प्रकाश में वाक्यपदीय का एक अध्ययन), हिन्दी अनुवाद रामचन्द्र द्विवेदी द्वारा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

4. शर्मा, रघुनाथ

   1963: वाक्यपदीयम्, (प्रथम भाग (ब्रह्मकाण्ड), हरिवृषभकृत स्वोपज्ञवृत्ति सहित अम्बाकर्त्री–व्याख्या),सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी।

   1968: वाक्यपदीयम्, (द्वितीय भाग (वाक्यकाण्ड), पुण्यराजकृत टीका सहित अम्बाकर्त्री–व्याख्या), सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी।

   1991: वाक्यपदीयम् (तृतीय काण्ड (पदकाण्ड), प्रथम भाग, हेलाराज की प्रकीर्णप्रकाश–व्याख्या सहित

---

[13])i) इदानीं साध्यापेक्षत्वात् साधनस्य साधनान्तरमुद्दिष्टायाः क्रियायाः शास्त्रीयं लक्षणमाह। –हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, ii, पृ०1

(ii) क्रियानन्तरं काल उद्दिष्टः। –हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, ii, पृ० 41

[14] शब्दप्रमाणका वयम्। – हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, ii, पृ०16

[15])i) तथा च लोके प्रसिद्धा दश दिशः सिद्धाः। – हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, i, पृ०228

(ii) लोके त्वखण्ड एव शब्दोऽखण्डस्यार्थस्य वाचक इति न तत्रार्थप्रविभागः नापि शब्दप्रविभागः सत्यरूपः। वाक्येन तत्र

व्यवहाराङ्ग। – हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, ii, पृ०31

[16])i) भूतः पञ्चविधस्तत्र भविष्यंश्च चतुर्विधः।

वर्तमानो द्विधाख्यात इत्येकादश कल्पनाः॥ –वा०प०, 3.9.38

(ii) सा स्वैरुपाधिभिर्भिन्ना शक्तिर्दिगिति कथ्यते। –वा०प०, 3.6.3

[17] विकल्पपरिघटितस्तु नानात्वव्यवहार इति सर्वाद्वैतवादिषु समानमेतत्। – हेलाराज-प्रकीर्णप्रकाश, iii, ii, पृ०26

अम्बाकर्त्री–व्याख्या), सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी (पुनर्मुद्रित संस्करण)।

1997: वाक्यपदीयम् (तृतीय काण्ड, द्वितीय भाग, हेलाराज की प्रकीर्णप्रकाश–व्याख्या सहित अम्बाकर्त्री–व्याख्या), सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालय,वाराणसी (पुनर्मुद्रित संस्करण)।

5. Iyer, K.A. Subramania
1965: The Vākyapadīya of Bhartṛhari with the Vṛtti, Chapter I, Eng. Trans., Deccan College, Poona.
1971: The Vākyapadīya of Bhartṛhari, Chapter III, Pt. I, Eng. Trans., Deccan College, Poona.
1974: The Vākyapadīya of Bhartṛhari, Chapter III, Pt. II, Eng. Trans. with exegetical notes, Motilal Banarsidass, Delhi.
1977: The Vākyapadīya of Bhartṛhari, Kāṇḍa II, Eng. Trans. with exegetical notes, Motilal Banarsidass, Delhi.
6. आप्टे, वामन शिवराम 2006: संस्कृत–हिन्दी कोश, रचना प्रकाशन, जयपुर।
7. Monier Williams, M. 1976: An English and Sanskrit Dictionary, Fourth Indian Edition, Motilal Banarsidass, Delhi.